# भारतीय कौंसिल एक्ट, 1909 ई०

1892 ई० के कानून से भारतीय संतुष्ट नहीं थे। कांग्रेस अपने प्रत्येक वर्ष के अधिवेशन में कौंसिलों के विस्तार और उनके सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि की मांग कर रही थी। इस कारण सरकार ने भारत दल को संतुष्ट करने तथा कांग्रेस को गरम दल के प्रभाव से बचाने के लिए कुछ सुधार करना आवश्यक समझा। इसके अतिरिक्त लार्ड कर्जन के व्यवहार और जापान तथा जापान के हाथों रूस की पराजय ने भारतीयों को अधिकाधिक असंतुष्ट और क्रांतिकारी कार्यवाइयों के लिए प्रोत्साहित किया। सरकार ने नरम दल को क्रांतिकारियों के प्रभाव से बचाने के लिए भी सुधार करना आवश्यक समझा। इस समय गवर्नर-जनरल मिण्टो और भारत-सचिव लार्ड मार्ले था अतः इन सुधारों को 'मार्ले मिण्टो सुधार' के नाम से पुकारा गया। इसकी शर्तें निम्नवत् थीं :

1) केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की संख्या 16 से बढ़ाकर 60 कर दी गई।
2) प्रांतों में भी व्यवस्थापिका-सभाओं के सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गई

जैसे केन्द्र, मद्रास और बम्बई में 50 सदस्य तथा अन्य प्रांतों में 30 सदस्य।

3) इस एक्ट के अनुसार व्यवस्थापिका सभाओं की सदस्यता चार प्रकार के होने लगी :
(1) पदेन सदस्य (Ex-officio members) जैसे केन्द्र में गवर्नर जनरल और इसकी कार्यकारिणी के सदस्य तथा प्रांतों में गवर्नर और उसकी कार्यकारिणी के सदस्य;
(2) मनोनीत सरकारी अधिकारी (Nominated officials); (3) मनोनीत गैर-सरकारी सदस्य (Nominated non officials); और
(4) निर्वाचित सदस्य (Elected members).

4) इन सुधारों द्वारा भारत में प्रादेशिक चुनाव पद्धति को आरंभ नहीं किया गया वरन् व्यवसायिक और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व-प्रणाली (Professional and Communal representation or Separate electoral System) को अपनाया गया। चुनाव क्षेत्र; प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं, जमींदार, व्यापारी वर्ग, जिला परिषद और मुसलमान आदि के आधार पर बनाए गए। उदाहरणार्थ केन्द्र के 27 निर्वाचित सदस्यों में से 5 मुसलमानों द्वारा

6 जमींदारों द्वारा, 1 मुसलमान जमींदारों द्वारा, 1 बम्बई की व्यवस्थापिका - सभा द्वारा, 1 बंगाल की व्यापारी - सभा द्वारा और 13 प्रांतीय व्यवस्थापिका - सभाओं के गैर - सरकारी सदस्यों द्वारा चुने जाते थे। इसी प्रकार की व्यवस्था प्रांतों में भी की गई।

5) केन्द्र में सरकारी सदस्यों का बहुमत रखा गया परंतु प्रांतों में गैर - सरकारी सदस्यों का बहुमत रहा। परंतु यह बहुमत केवल निर्वाचित सदस्यों का ही न था। इसमें मनोनीत गैर - सरकारी सदस्य भी सम्मिलित थे।

6) व्यवस्थापिका - सभाओं के अधिकारों में वृद्धि की गई। सदस्यों को आर्थिक प्रस्तावों पर वाद - विवाद करने, उनके विषय में संशोधन - प्रस्ताव रखने और उनके कुछ विषयों पर मतदान करने तथा अन्य साधारण प्रस्तावों के बारे में विवाद करने, प्रश्न पूछने, सहायक प्रश्न पूछने और मतदान करने एवं सार्वजनिक हित के लिए प्रस्तावों को प्रस्तुत करने का अधिकार दिया गया, यद्यपि प्रत्येक

स्थिति में गवर्नरों और गवर्नर जनरल को उनकी सलाह ठुकराने का अधिकार था।

7) भारत-सचिव को मद्रास और बम्बई की कार्यकारिणी के सदस्यों की संख्या को 2 से बढ़ाकर 4 कर देने का अधिकार दिया गया। गवर्नर-जनरल भारत सचिव से स्वीकृति लेकर यही व्यवस्था बंगाल और अन्य प्रांतो में भी कर सकता था।

8) भारत सरकार की परिषद (Council) में दो भारतीयों की नियुक्ति 1907 में हो चुकी थी। 1909 ई० में गवर्नर-जनरल को अपनी कार्यकारिणी में एक भारतीय सदस्य को लेने का भी अधिकार मिल गया। इसके प्रथम भारतीय सदस्य श्री एस० पी० सिन्हा थे जिन्हें बाद में लार्ड की उपाधि से विभूषित किया गया।

समीक्षा: लार्ड मोर्ले ने इन सुधारों को लागू करने से पहले इनके विषय में श्री गोपाल कृष्ण गोखले

से सहमति ले ली थी और 1908 ई० में कांग्रेस ने इन प्रस्तावित सुधारों के प्रति संतोष प्रकट किया था। लेकिन जल्द ही उन्होंने असंतोष प्रकट किया क्योंकि इन सुधारों में निम्नलिखित दोष थे :

(1) निर्वाचन के लिए जो अप्रत्यक्ष निर्वाचन-प्रणाली अपनाई गई वह सर्वथा असंतोषजनक थी। मतदाताओं की योग्यता बहुत ऊँची रखी गई थी जिसके कारण अधिक-धनवान व्यक्ति ही मतदाता हो सकते थे। अयोग्यताओं के नियम भी ऐसे कठोर थे जिससे उग्रविचारों के व्यक्ति चुनावों में भाग नहीं ले सकते थे।

(2) प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली भारत के लिए बहुत हानिकारक थी। इससे भारत को विभिन्न वर्गों में बाँट दिया जिनमें आपस में द्वेष, ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा होने लगी। साम्प्रदायिकता का प्रश्न भारतीय राजनीति में इसी समय से आरम्भ हुआ। मुसलमानों को अलग प्रतिनिधित्व प्रदान करके

उन्हें सदा के लिए भारत के अन्य नागरिकों से पृथक कर दिया गया। इससे मुस्लिम साम्प्रदायिक भावना दिन-प्रतिदिन तीव्र होती गयी जिसका अन्तिम परिणाम भारत का विभाजन हुआ।

3. केन्द्र में तो सरकारी सदस्यों का बहुमत था ही, प्रांतों में भी मनोनीत गैर-सरकारी सदस्य सरकारी सदस्यों का ही साथ देते थे। इस कारण निर्वाचित सदस्यों की सलाह पर किसी भी कार्य के होने की संभावना नहीं हो सकती थी।

4) इसके अतिरिक्त गवर्नरों और गवर्नर जनरल को उनकी किसी भी सलाह को ठुकराने का पूर्ण अधिकार था।

5. इन सुधारों द्वारा भविष्य के लिए कोई लक्ष्य निश्चित नहीं किया था। संसदीय संस्थाएं तो स्थापित की गई थी किंतु संसदीय शासन व्यवस्था को लक्ष्य नहीं बनाया गया था।

लेकिन 1892 ई० में एक्ट की अपेक्षा यह मिन्टो-मार्ले एक प्रगतिशील कदम था। भारतीयों को संसदीय शासन-व्यवस्था का परिचय इन्हीं सुधारों से प्राप्त हुआ। अप्रत्यक्ष निर्वाचन-पद्धति और व्यवस्थापिका-सभाओं के अधिकारों में वृद्धि भी महत्वपूर्ण कदम थे।